कालिदाससङ्गीतम्

प्रो. सत्यव्रत शास्त्री
की सेवा में —
सादर —
प्रेमलता शर्मा
६।१।७४

शी हिन्दू विश्वविद्यालय

१९७३

कालिदाससङ्गीतम्

संपादक

डॉ० रेवाप्रसाद द्विवेदी

अध्यक्ष, साहित्यविभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

वाराणसी–५

महाकविकालिदास का साहित्य राष्ट्ररूपी भगवान् विष्णु के प्रबोधमंगल का साहित्य है। संस्कृत, प्राकृत अपभ्रंश भाषाओं तथा काव्य, नाट्य, नृत्य और संगीत इन सभी विधाओं से समृद्ध यह साहित्य कलाओं का संगम तीर्थ है। यहाँ उपस्थित है इसकी संक्षिप्त झाँकी वृन्दगान, एकलगान, कुतपसंयोजन, नृत्य और मूक अभिनय इन सभी विधाओं में भरतमुनिद्वारा प्रतिपादित ग्राममूर्च्छनापद्धति से।

वस्तुयोजना—श्री लक्ष्मीनारायण जोशी, परामर्शदाता, का.हि.वि.वि

संस्कृत संवाद तथा रागयोजना—डॉ. प्रेमलता शर्मा, अध्यक्ष, संगीत शास्त्र का.हि.वि.वि.

अनुवाद तथा संपादन—डॉ. रेवाप्रसाद द्विवेदी, अध्यक्ष, संस्कृत साहित्य विभाग, का.हि.वि.वि.

मुद्रक—तारा प्रिंटिंग वर्क्स

कालिदाससङ्गीतम्

—

मङ्गलगान

[महाकवि कालिदास ने अपने सभी मंगलपद्यों में भगवान् शिव की वन्दना की है और उन्हें 'पञ्चमहाभूत, सूर्य, चन्द्र और चेतना' इन आठ रूपों में प्रकाशमान विश्व को शिव, तथा शिव को विश्वरूप बतलाया है। उनके मंगल पद्य इस प्रकार हैं]

मृदङ्गध्वनि ।

[राग भूपाली]—

वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये ।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ ॥

जगत् के माता पिता पार्वती और शिव को प्रणाम । वाणी और अर्थ के समान संपृक्त वे हमें वाणी और अर्थ प्रदान करें ॥

[राग शंकरा]—

वेदान्तेषु यमाहुरेकपुरुषं व्याप्य स्थितं रोदसी
यस्मिन्नीश्वर इत्यनन्यविषयः शब्दो यथार्थाक्षरः ।
अन्तर्यश्च मुमुक्षुभिर्नियमितप्राणादिभिर्मृग्यते
स स्थाणुः स्थिरभक्तियोगसुलभो निश्श्रेयसायास्तु वः ॥

सभी उपनिषद् जिसे एक किन्तु विश्वव्यापी कहते हैं, किसी भी अन्य में असङ्गत 'ईश्वर' शब्द जिसमें अक्षरशः सार्थक है और जिसे मुमुक्षु योगी अपने भीतर खोजते हैं, स्थिर भक्तियोग से सुलभ वह स्थाणु आपको मुक्ति प्रदान करे ॥

[राग हमीर]—

ऐकैश्वर्ये स्थितोऽपि प्रणतबहुफले यः स्वयं कृत्तिवासाः
कान्तासंमिश्रदेहोऽप्यविषयमनसां यः परस्ताद् यतीनाम् ।
अष्टाभिर्यस्य कृत्स्नं जगदपि तनुभिर्बिभ्रतो नाभिमानः
सन्मार्गालोकनाय व्यपनयतु स वस्तामसीं वृत्तिमीशः ॥

जिसके अतिरिक्त अन्य कोई ईश्वर नहीं, जो भक्त को त्रिविध फल देते किन्तु स्वयं गजासुर का चर्म ओढ़कर संतुष्ट रहते हैं, अर्धनारीश्वर होते हुए भी जो निर्विषय चित्तवाले योगियों से भी परे हैं, संपूर्ण संसार को जो अपनी आठ मूर्त्तियों से धारण किए हुए है किन्तु जिन्हें अभिमान छू भी नहीं गया है, ऐसे भगवान् शिव सन्मार्ग दिखलाने हेतु आपकी तामसी वृत्ति दूर करें ।।

[राग केदार]—

या सृष्टि: स्रष्टुराद्या वहति विधिहुतं या हविर्या च होत्री
ये द्वे कालं विधत्त: श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्य विश्वम् ।
यामाहु: सर्वबीजप्रकृतिरिति यया प्राणिन: प्राणवन्त:
प्रत्यक्षाभि: प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्तामसीं वृत्तिमीश: ।।

'जल, यज्ञाग्नि, यजमान, सूर्य, चन्द्र, आकाश, पृथिवी और वायु' (अर्थात् पञ्चमहाभूत, सूर्य, चन्द्र और चेतना) अपनी इन आठ प्रत्यक्ष मूर्त्तियों में प्रकट शिव आपकी तामसी वृत्ति दूर करें ।।

भावार्थ : पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्र और चेतना की आठ मूर्त्तियों में भगवान् के दर्शन प्रत्येक व्यक्ति को हो रहे हैं। इन आठ मूर्त्तियों से युक्त अतएव अष्टमूर्त्ति होते हुए भी एक और अद्वितीय, सर्वशक्तिमान् होते हुए भी केवल गजासुर का चर्म ओढ़कर संतुष्ट, वाणी से अर्थ के समान पार्वती से मिश्रित अतएव अर्धनारीश्वर होते हुए भी परम विरक्त भगवान् शिव हमारा स्थिर भक्तियोग स्वीकार कर हमें आशीर्वाद और आपको प्रकाश प्रदान करें।

[सूत्रधार द्वारा भावी कार्य की सूचना]

प्रथमकुसुम

ऋतुसंहार-नृत्य-नाटिका

[सूर्य और चन्द्र की बदलती स्थितियों से बननेवाली छः ऋतुएँ और उनसे अलंकृत पंचमहाभूत भारतमाता की मनोरम झाँकी है। अपने प्रथम काव्य ऋतुसंहार में प्रस्तुत इस झाँकी का, आइए, हम सब दर्शन करें और देखें कि संवत्सर के इस परिवर्तन-चक्र में भगवान् अष्टमूर्ति की आठवीं मूर्ति यानी व्यक्ति और समष्टि की चेतना भावनाओं की किन-किन बहुरंगी दोलाओं पर थिरकती दिखाई देती है]—

[भरतनाट्यशैली]

ग्रीष्म :

[वृन्दावनी सारंग]

प्रचण्डसूर्यः स्पृहणीयचन्द्रमाः सदावगाहक्षतवारिसञ्चयः ।
दिनान्तरम्योऽभ्युपशान्तमन्मथो निदाघकालोऽयमुपागतः प्रिये ।।१।१

ग्रीष्म ऋतु उपस्थित है। इस समय सूर्य की प्रचण्ड धूप कौन सह सकता है, परन्तु शान्तिप्रिय प्रकृति इस समय भी चन्द्र की शीतल किरणें लेकर उपस्थित है। जलस्पर्श अधिकाधिक स्पृहणीय होता जा रहा है। प्यास बढ़ रही है और साँझ की सुन्दरता अपूर्व होती जा रही है ।।

श्वसिति विहगवर्गः शीर्णपर्णद्रुमस्थः
कपिकुलमुपयाति क्लान्तमद्रेर्निकुञ्जम् ।
भ्रमति गवययूथः सर्वतस्तोयमिच्छन्
शरभकुलमजिह्मं प्रोद्धरत्यम्बु कूपात् ।।१।२३।।

दिन तपने लगे हैं। अब पक्षी हाँफने लगे हैं, वृक्षों की पत्तियाँ झड़ने लगी हैं, उदास वानर आश्रय के लिए पर्वत के कुञ्ज में छिपने लगे हैं। शरभ-नामक मृग तो कुए से पानी पी लेता है, किन्तु गवय पानी की खोज में चारों ओर भटक रहे हैं ।।

वर्षा :

[राग मल्लार] —

ससीकराम्भोधरमत्तकुञ्जरस्तडित्पताकोऽशनिशब्दमर्दलः ।
समागतो राजवदुद्धतद्युतिर्घनागमः कामिजनप्रियः प्रिये ।।२।१।।

जल की फुहारों से भरे, विद्युत्पताका फहराते, मृदंगवत् गरजते और मदमत्त गजराज जैसे काले-काले बादलों का शुभागमन होने लगा है ।।

विपाण्डुरं कीटरजस्तृणान्वितं भुजङ्गवद् वक्रगतिप्रसर्पितम् ।
ससाध्वसैर्भेककुलैर्निरीक्षितं प्रयाति निम्नाभिमुखं नवोदकम् ।।२।१३।

अब सरिताएँ भर चुकी हैं। उनका मटमैला पानी कीट, धूल, तृण को लेकर टेढ़ीमेढ़ी गति से वह रहा है। कूदते मेंढक उसे रेंगता हुआ कुटिल सर्प समझकर भाग रहे हैं; किन्तु जल की फुहारों से आनन्दित भी हो रहे हैं। इस समय नववर्षा से आनन्दित मयूरों का नृत्य कितना आनन्ददायी है ।।

शरद् :

[राग केदार]—

काशांशुका विकचपद्ममनोज्ञनेत्रा सोन्मादहंसरवनूपुरनादरम्या ।
आपक्वशालिरुचिरानतगात्रयष्टिः प्राप्ता शरन्नववधूरिव रूपरम्या ।।३।१

कासपुष्पों का अंशुक पहने, हंसरूपी नूपुरों के सुरम्य नाद से रमणीय, पकी धान से सुहावनी, यह शरद् नव-वधू सी लग रही है। खिले कमलों में दिखाई दे रहा है इसका सलोना मुखड़ा ।।

आकम्पयन् फलभरानतशालिजालान्यानर्त्तयंस्तरुवरान् कुसुमावनम्रान् ।
उत्फुल्लपङ्कजवनां नलिनीं विधुन्वन् यूनां मनश्चलयति प्रसभं नभस्वान्
।।३।१०।।

अन्न से भरी बालों से पौधे झुक रहे हैं। धीर वायु उन्हें कँपा रही है। वृक्ष पुष्पों से भर गए हैं। प्रफुल्ल कमलवन शीतल वायु से झूम रहे हैं। इस समय चन्द्र की किरण और नवयुवतियों के शृंगार सभी के चित्तों को मोहित कर रहे हैं ।।

हेमन्त :

[राग हिण्डोल]—

नवप्रवालोद्गमसस्यरम्यः प्रोत्फुल्ललोध्रः परिपक्वशालिः ।
विलीनपद्मः प्रपतत्तुषारो हेमन्तकालः समुपागतोऽयम् ।।४।१।।

हेमन्त में जौ में नवीन अंकुर फूटने लगे हैं। खेती पक चुकी है और लोध्र-वृक्ष फूल उठे हैं। किन्तु सरोवरों में कमल दिखाई नहीं पड़ रहे, हिमपात जो होने लगा है ।।

प्रफुल्लनीलोत्पलशोभितानि सोन्मादकादम्बविभूषितानि ।
प्रसन्नतोयानि सुशीतलानि सरांसि चेतांसि हरन्ति पुंसाम् ।।४।६।।

खिले नील कमल और उन्मत्त राजहंसों से अलंकृत, स्वच्छ जल वाले शीतल सरोवर लोगों के चित्त आकृष्ट कर रहे हैं ।।

शिशिर :

[राग जोग]—

तुषारसंघातनिपातशीतलाः शशाङ्कभाभिः शिशिरीकृताः पुनः ।
विपाण्डु-तारा-गण-चारुभूषणा जनस्य सेव्या न भवन्ति रात्रयः ।।५।४।।

ओस बरसाती चाँदनी से रात्रिकाल को शीतल और निर्जन बनाती यह शिशिर ऋतु है। इस समय सभी जीव अपने आश्रयों में छिपे हैं।

मनुष्य अग्निदेव के अधिकाधिक सामीप्य की इच्छा कर रहे हैं। उषाकाल में सुन्दर वनिताओं के सुहावने चेहरे देखने से लगता है जैसे घर-घर में गृहलक्ष्मी आ गई हो।

वसन्त :

[राग वसन्तबहार]—

द्रुमाः सपुष्पाः सलिलं सपद्मं स्त्रियः सकामाः पवनः सुगन्धिः।
सुखाः प्रदोषा दिवसाश्च रम्याः सर्वं प्रिये चारुतरं वसन्ते ॥६।२।

वृक्षों को पुष्पित, जलाशयों को कमलों से आपूरित, वनिताओं को कामवाणों से आहत और वायु को सुरभित करता यह है ऋतुराज वसन्त। इस समय रात और दिन दोनों ही विछुड़ कर मिले दम्पती के समान सुखपूर्ण हो गए हैं।

मत्तद्विरेफपरिचुम्बितचारुपुष्पा मन्दानिलाकुलितनम्रमृदुप्रवालाः।
कुर्वन्ति कामिमनसां सहसोत्सुकत्वं बालातिमुक्तलतिकाः समवेक्ष्यमाणाः
॥६।१६॥

पुष्परसपान से प्रमत्त भौरों और मन्दमृदु पवन से आन्दोलित लताओं के किसलय और पुष्प देखकर व्यक्ति-चेतना एकाएक उत्सुक हो उठती है। कितना सुन्दर है वसन्त। रमणीय सब कुछ रमणीय ॥

द्वितीय कुसुम

गीतावलि

अभिज्ञानशाकुन्तल और विक्रमोर्वशीय के प्राकृत तथा अपभ्रंश के पाँच गीतों का गान।

१. शकुन्तला को भूले दुष्यन्त से कहा जा रहा है 'मधुकर तू अपनी उस आम्रमञ्जरी को कैसे भूल गया'।

२. कुमार कार्तिकेय के तपोवन में पहुंचते ही उर्वशी लतारूप में परिणत हो जाती है। उसी समय आकाश में मेघ छाने लगते हैं। उर्वशी की दो सखियाँ पुरूरवा के भावी दुःख से व्यथित हैं। कहा जा रहा है—"दो हंसियाँ सरोवर में आँसू वहा रही हैं अपनी सहचरी के विरह में"।

३. "विछुड़ी हंसी भी खिले कमलों से भरे सरोवर में भी व्यथित है सहचरियों के विरह में"।

४. उर्वशीविरही पुरूरवा गन्धमादन पर एकाकी भटक रहा है। कहा जा रहा है—"प्रियविरह से दुखी गजेन्द्र कानन में अकेला भटक रहा है"।

५. यही विरही पुरूरवा गिरिराज गन्धमादन से कहता है—'महीधर, तुम बड़े ही भले हो, मत छिपाओ मेरी प्रियतमा को, दिखला दो, उसे शीघ्र दिखला दो'।

सन्दर्भसूचक वार्तालाप

१. किमिति वयं गीतोपकरणसमवेताः ?

२. 'यानि वाक्यैस्तु न ब्रूयात् तानि गीतैरुदाहरेद्' इति भरत-विधानमनुसरता महाकविना कालिदासेन रूपकेषु यानि गीतानि निविष्टानि स्थालीपुलाकतया तेषामास्वादनार्थम्।

१. ननु नाट्ये गीतनिवेश इति किम् ?

२. अहो नाट्येऽपि माहात्म्यं गीतस्य ? उक्तं हि नाट्शास्त्रकृता भरतेन—

गीते प्रयत्नः प्रथमस्तु कार्यः
शय्यां हि नाट्स्य वदन्ति गीतम् ।। इति

अत्र च नाट्योपरञ्जकरूपेण विहिते ध्रुवागान एव तात्पर्यम्।

१. किन्तु ध्रुवाणामुदाहरणे भरतेन प्राकृतमेवोपात्तम्, न संस्कृतम्।

२. आम् तथैव कालिदासेनापि।

१. तथैवेति किम्।

२. भरतेन प्राकृतमात्रम्, कालिदासेन पुनः अपभ्रंशोऽपि।

१. किमत्र तेषां संस्कृतच्छायया गानं न संभवति ?

२. अथ किम्। संस्कृतच्छायया गानं तु नैवात्र कल्पितम्। किञ्च छायापेक्षया मूलमेव ज्यायः।

१. साधु साधु।

२—एवं तर्हि, सर्वप्रथमं नाटकमौलिभूतस्याभिज्ञानशाकुन्तलस्य पञ्चमाङ्के स्थितं सुप्रसिद्धं ध्रुवागानम् "अहिणवमहुलोलुवो"—इत्यादि श्रवणगोचरं भवेत्।

१—सुस्पष्टतार्थं प्रथमं प्राकृत-पदरचना संस्कृतच्छायया सहकृता पठितव्या। तदनन्तरं गानं स्यात्।

२—तदेव कल्पितमत्र। सावधानं श्रूयताम्।

अहिणवमहुलोलुवो तुमं
तह परिचुम्बिअ चूअमञ्जरिम् ।
कमलवसइमेत्तनिव्वुदो
महुअर! विम्हरिओ सि णं कहम् ।।

संस्कृतच्छाया—

अभिनवमधुलोलुपस्त्वं
तथा परिचुम्ब्य चतमञ्जरीम् ।
कमलवसतिमात्रनिर्वृतो
मधुकर ! विस्मृतोऽस्येनां कथम् ।।

१—अहो ! कोऽपि गभीरो व्यङ्ग्यार्थो निहितोऽत्र महाकविना ।

२—भाविनः शकुन्तलाप्रत्याख्यानात्मकस्य गूढार्थस्याक्षेपं वहन्ती ध्रुवेयम् आक्षेपिकी-कोट्यां निवेशमर्हति ।

१—अलमत्र कोटिपरामर्शेन । श्रवणोत्कतैवास्माकमत्र बाधते ।

२—श्रूयतां तर्हि । नैवान्तरायोपस्थापने प्रवृत्ताऽहम्

[छायानटरागेण मूलगानम्]

१—अहो रागपरिवाहिणी गीतिरिति दुष्यन्तोक्तिः स्मारिताऽत्र-भवत्या गीतिमाधुर्येण ।

२—साम्प्रतं विक्रमोर्वशीयस्य मानसमृद्धाच्चतुर्थाङ्कादाहृतानां कति-पयगीतानाम् आस्वादनार्थम् अवहितैर्भवितव्यमस्माभिः ।

१—बाढम् । तत्र तु गानानामपूर्वं प्राचुर्यं वर्तते ।

२—कुमारवन उर्वशी लतारूपेणान्तर्हिता, तस्या अदर्शनेन दुःखिते सख्यौ चित्रलेखा-सहजन्ये यदा सञ्चरतः, तदाऽऽक्षेपिकी-ध्रुवा-द्वारेण तयोरवस्था सूचिता ।

सहअरिदुःखालिद्धअं
सरवरअम्मि सिणिद्धअं ।
अविरलबाहजलोल्लअं
तम्मइ हंसीजुअलअं ।।

संस्कृतच्छाया—

सहचरिदुःखालीढं
सरोवरे, स्निग्धम् ।
अविरलबाष्पजलार्द्रं
ताम्यति हंसीयुगलकम् ।।

१—वहु शोभनम् । हंसीयुगलरूपेणाक्षिप्तस्य सखीद्वयस्य दशावर्णनमधुना गीतद्वारेण प्रस्तूयेते ।

[विहागरागेण मूलगानम्]

१—अतीव रम्यं गानम् ।

२—सखीयुगलस्य निष्क्रमणकाले नैष्क्रामिकी—ध्रुवाऽपि सहृदयहृदयावर्जिका । तत्र सहजन्याया वियोगविह्वलताया हेतोरेकवचने हंस्या आक्षेपो दृश्यते ।

१—उत्कर्णा वयम् ।

चिन्ता-दुम्मिअ-माणसिआ
सहअरि-दंसण-लालसिआ ।
विअसिअकमल-मणोहरए
विहरइ हंसी सरवरए ।।

संस्कृतच्छाया—

चिन्तादूनमानसा, सहचरिदर्शनलालसा ।
विकसितकमलमनोहरे, विहरति हंसी सरोवरे ।।

१—अत्रभवत्याः कण्ठम् अलंकरोतु गीतमिदम् ।

[खमाजरागेण मूलगानम्]

१—अहो कान्तिः सुशारीरस्य ।

२—पुरूरवसो वियोगतापाभिव्यञ्जने अन्योक्तिरूपाणि प्रत्युक्तिरूपाणि चेति द्विविधानि गीतानि सन्निविष्टानि महाकविना ।

१—एवम् । अन्योक्तिपराणि गीतान्यनिर्दिष्टकण्ठेनोपस्थापितानि, प्रत्युक्तिपराणि च पुरूरवसः कण्ठेन ।

२—तत्र अन्योक्तिपरं गीतमेकं श्रोष्यामोऽधुना वयम् ।

१—तदेव भवतु नाम ।

पिअअम-विरह-किलामिअ-वअणओ ।
अविरलबाहजलाउल-णअणओ ।
दूसहदुक्ख-विसंठुलगमणओ
पसरिअ-गुरुताव-दीवि-अंगओ (अहिअं दुम्मिअमाणसओ
काणणे भमइ गइंदओ ।।

संस्कृतच्छाया—

प्रियतमाविरहक्लान्तवदनः
अविरलवाष्पजलाकुलनयनः ।
दुःसहदुःखविसंष्ठुलगमनः
प्रसृतगुरुतापदीपिताङ्गः ॥
अधिकं दूनमानसः
कानने भ्रमति गजेन्द्रः ॥

१—गजेन्द्ररूपेणाक्षेपोऽत्र पुरूरवसः । गीतमिदं तु पुरुषकण्ठ एव शोभनं भवेत् ।

[दरबारीकान्हडारागेण मूलगानम्]

१—अहो हृद्यता कवेरशब्दगोचरमभिप्रायं व्यञ्जयन्त्या गीतेः ।

२—प्रत्युक्तिपरं गीतमेकं श्रोतव्यमधुना ।

१—एवमेव ।

फलिहसिलाअलणिम्मलणिज्झरु
बहुविहकुसुमे बिरइअ-सेहरु ।
किंणरमहुरोग्गीअ-मणोहरु,
देक्खावहि मह पिअअम महिहरु ॥

संस्कृतच्छाया—

स्फटिकशिलातलनिर्मलनिर्झर
वहुविधकुसुमैर्विरचितशेखर ।
किन्नरमधुरोद्गीतमनोहर
दर्शय मम प्रियतमां महीधर ॥

१. अहो वियोगार्तानां प्रणयकृपणता चेतनाचेतनेषु । पाषाणमयो महीधर एव प्रार्थितोऽत्र पुरूरवसा प्रियतमादर्शनार्थम् ।

२. तस्य याच्ञां भवतः कण्ठेन श्रोतुकामा वयम् ।

[भिन्नषड्जरागेण मूलगानम्]

१. आकण्ठं रसमग्ना वयमधुना ।

२. किन्तु मालविकाग्निमित्रस्य द्वितीयाङ्के मालविकायाश्चतुष्पदी-गानसहकृतेऽभिनये नृत्ये च श्रव्येण सह दृश्यसंयोजनेन रसपरिपाको भूरितरो भवितुमर्हति ।

१. आम् ! तदपि कल्पितमत्रेति नो ज्ञातं मया । तर्हि नृत्यार्थं तु मञ्चेऽत्र अवकाशो देयः ।

२. स तु देय एव । किन्तु चतुष्पदी पठितव्याऽऽदौ ।

दुल्लहो पिओ मे, तस्सिं भव हिअअ णिरासम्
अम्मो ! अवांगो से, परिप्फुरइ किंपि वामओ ।
एसो चिरदिट्ठो, कहं उवणइदव्वो,
णाह मं पराहीणं, तुइ गणअ सहिण्हम् ।।

संस्कृतच्छाया—

दुर्लभः प्रियो मे, तस्मिन् भव हृदय निराशम्
अहो अपाङ्गो मे, परिस्फुरति किमपि वामः ।
एष चिरदृष्टः, कथम् उपनेतव्यः ?
नाथ ! मां पराधीनां त्वयि गणय सतृष्णाम् ।

[वागीश्वरी-भिन्नषड्जमालकौस-रागाः]

१—अहो भावशावल्यम् ! नैराश्यम्, औत्सुक्यम्, आश्चर्यं, वैवश्यं, प्रणयनिवेदनं चेति भावपञ्चकम् एकस्यां चतुष्पद्यां निहितम् ।

२—तत्सर्वं गीतद्वारेणाभिनयद्वारेण चास्वादनयोग्यतां यास्यति ।

१—श्रवणे दर्शने चोत्कण्ठिता वयम् ।

सर्वे— नूनम् ।

(अनन्तरं मालविकाया नृत्यम्)

तृतीय कुसुम

मालविका-नृत्य

मालविकाग्निमित्र में संगीताचार्य गणदास अपनी निपुण शिष्या मालविका की परीक्षा दिला रहे हैं। अग्निमित्र पर अनुरक्त मालविका शर्मिष्ठा की कठिन कृति छलिक को नृत्य द्वारा प्रस्तुत करती और गीत द्वारा अग्निमित्र को लक्ष्य कर कहती है "मेरा प्रिय बड़ा ही दुर्लभ है, चित्त निराश हो जा, परन्तु मेरी बाईं आँख फरक रही है"। [पद्य दुल्लहो···]

चतुर्थ कुसुम

सीता-सन्देश

रघुवंश के चतुर्दश सर्ग में लोकपालक राम गर्भिणी सीता को लोकापवाद के कारण लक्ष्मण द्वारा वन में छुड़वा देते हैं। परित्यक्त सीता

वन में लक्ष्मण से कह रही है—"वत्स लक्ष्मण, सासों से कहना वे कम-से-कम चित्त से भी उनके भावी नातियों का ध्यान रखें। और उस राजा से मेरे शब्दों में कहना कि अग्निपरीक्षा में विशुद्ध सिद्ध मुझे इस प्रकार केवल लोकापवाद के कारण छोड़ना क्या उसके विश्रुत वंश के अनुरूप है"। आदि आदि। लक्ष्मण चले जाते हैं। वाल्मीकि आते हैं और सीता को आश्वासन देते हुए कहते हैं"—"राम बड़े ही लोकोपकारी हैं। पर बेटी, उन पर मुझे भी क्षोभ है। तुम्हें इस प्रकार अकारण और एकाएक छोड़ना मुझे भी सह्य नहीं'। वे सीता को अपने आश्रम लिवा ले जाते हैं।]

गुरोर्नियोगाद्वनितां वनान्ते साध्वीं सुमित्रातनयो विहास्यन् ।
अवार्यतेवोत्थितवीचिहस्तैर्जह्नोर्दुहित्रा स्थितया पुरस्तात् ॥१॥

मार्ग में गङ्गाजी पड़ीं। उनमें लहरें उठ रही थीं। वे बड़े भाईकी आज्ञासे पतिव्रता सीताको वनमें छोड़नेके लिए ले जाते हुए लक्ष्मणसे मानो हाथ हिला-हिलाकर मना कर रही थीं ॥१॥

रथात् स यन्त्रा निगृहीतवाहात् तां भ्रातृजायां पुलिनेऽवतार्य ।
गङ्गां निषादाहृतनौविशेषस्ततार संधामिव सत्यसंधः ॥२॥

गंगातटपर पहुँचकर सारथिने रास खींच ली। तब सत्यप्रतिज्ञ लक्ष्मणने सीताजीको रेतीपर उतारा और प्रतिज्ञा के ही समान गङ्गाजीसे भी पार हो गये ॥२॥

अथ व्यवस्थापितवाक् कथंचित् सौमित्रिरन्तर्गतबाष्पकण्ठः ।
औत्पातिको मेघ इवाश्मवर्षं महीपतेः शासनमुज्जगार ॥३॥

वहाँ आँसू रोककर रुद्ध कण्ठ लक्ष्मणने सीताजी के सामने राजा राम की आज्ञा ऐसे उगली जैसे कोई भयङ्कर बादल पत्थर उगलता है ॥३॥

ततोऽभिषङ्गानिलविप्रविद्धा प्रभ्रश्यमानाभरणप्रसूना ।
स्वमूर्तिलाभप्रकृतिं धरित्रीं लतेव सीता सहसा जगाम ॥४॥

लू लगनेसे जैसे लताके फूल झड़ जाते हैं और वह पृथ्वीपर गिर पड़ती है, वैसे ही यह अपमानजनक बात सुनकर सीताके आभूषण गिर गये और वे स्वयं अपनी माँ पृथ्वीकी गोदमें गिर पड़ीं ॥४॥

इक्ष्वाकुवंशप्रभवः कथं त्वां त्यजेदकस्मात् पतिरार्यवृत्तः ।
इति क्षितिः संशयितेव तस्यै ददौ प्रवेशं जननी न तावत् ॥५॥

पृथ्वीने उस समय सीताजीको मानों इस दुविधासे अपने भीतर नहीं छिपाया कि इक्ष्वाकुवंशी और सदाचारी पति राम इस प्रकार सीताको अचानक क्यों छोड़ेंगे ।।५।।

सा लुप्तसंज्ञा न विवेद दुःखं प्रत्यागतासुः समतप्यतान्तः ।
तस्याः सुमित्रात्मजयत्नलब्धो मोहादभूत् कष्टतरः प्रबोधः ।।६।।

मूर्च्छा आ जानेसे उन्हें उस समय तो दुःख नहीं हुआ, पर जब वे जागीं, तो उन्हें बड़ी व्यथा हुई । लक्ष्मणके प्रयत्न से प्रबुद्ध होना उन्हें मूर्च्छासे भी अधिक अखरा ।।६।।

न चावदद् भर्तुरवर्णमार्या निराकरिष्णोर्वृजिनादृतेऽपि ।
आत्मानमेव स्थिरदुःखभाजं पुनःपुनर्दुष्कृतिनं निनिन्द ।।७।।

साध्वी सीता ने विना अपराध के घरसे निकालनेवाले अपने पतिको कुछ भी नहीं कहा, वे नित्य दुःखभागी अपने आपको ही कोसने लगीं ।।७।।

आश्वास्य रामावरजः सतीं तामाख्यातवाल्मीकिनिकेतमार्गः ।
निघ्नस्य मे भर्तृनिदेशरौक्ष्यं देवि क्षमस्वेति बभूव नम्रः ।।८।।

तब लक्ष्मणने उन्हें समझाया और वाल्मीकि—आश्रमका मार्ग दिखाकर कहा—'देवि ! मैं पराधीन हूँ । अतएव स्वामी की आज्ञासे मैंने आपके साथ जो रूखा व्यवहार किया है, उसे आप क्षमा कीजिए' । और वे पैरोंपर लौट गये ।।८।।

सीता तमुत्थाप्य जगाद वाक्यं प्रीताऽस्मि ते सौम्य चिराय जीव ।
विडौजसा विष्णुरिवाग्रजेन भ्रात्रा यदित्थं परवानसि त्वम् ।।९।।

सीताजीने लक्ष्मणको उठाया और बोलीं—हे सौम्य ! मैं तुमपर प्रसन्न हूँ । तुम चिरकाल तक जीयो । क्योंकि जैसे इन्द्रके छोटे भाई विष्णु सदा अपने बड़े भाईकी आज्ञा मानते हैं, वैसे ही तुम भी अपने बड़े भाईकी आज्ञा मान रहे हो ।।९।।

श्वश्रूजनं सर्वमनुक्रमेण विज्ञापय प्रापितमत्प्रणामः ।
प्रजानिषेकं मयि वर्तमानं सूनोरनुध्यायत चेतसेति ।।१०।।

यहाँसे जाकर तुम सभी सासुओंसे मेरा प्रणाम निवेदन कर कहना कि 'मेरे गर्भमें आपके पुत्रका जो अंश है आपलोग कम-से-कम हृदय से भी उसका ध्यान रखिएगा ।।१०।।

वाच्यस्त्वया मद्वचनात् स राजा वह्नौ विशुद्धामपि यत् समक्षम् ।
मां लोकवादश्रवणादहासीः श्रुतस्य किं तत् सदृशं कुलस्य ॥११॥

उस राजा से मेरे शब्दों में कहना कि 'अपने सामने ही मुझे अग्निमें शुद्ध पाकर भी अपयशके डरसे जो मुझे छोड़ दिया है वह क्या विश्रुत कुल के अनुरूप है ? ॥११॥

कल्याणबुद्धेरथवा तवायं न कामचारो मयि शङ्कनीयः ।
ममैव जन्मान्तरपातकानां विपाकविस्फूर्जथुरप्रसह्यः ॥१२॥

पर नहीं तुम कल्याणबुद्धि हो, अपने मनसे मेरे साथ ऐसा व्यवहार नहीं कर सकते। यह सब मेरे ही पूर्व जन्मके पापोंका असह्य दुर्विपाक है ॥१२॥

उपस्थितां पूर्वमपास्य लक्ष्मीं वनं मया सार्धमसि प्रपन्नः ।
तवास्पदं प्राप्य तयाऽतिरोषात् सोढाऽस्मि न त्वद्भवने वसन्ती ॥१३॥

पहले आप राज्यलक्ष्मी को ठुकराकर मेरे साथ वन में गये थे, अब राज़्यलक्ष्मी मुझे आपके घर में रहते नहीं देख सकी ॥१३॥

निशाचरोपप्लुतभर्तृकाणां तपस्विनीनां भवतः प्रसादात् ।
भूत्वा शरण्या शरणार्थमन्यं कथं प्रपत्स्ये त्वयि दीप्यमाने ॥१४॥

गत वनवास में तुम्हारी कृपा से मैं बहुत-सी ऐसी तपस्विनियों को अपने आश्रम में आश्रय देती रही जिनके पतियों को राक्षसों ने मार डाला था। तुम्हारे रहते ही मैं स्वयं शरणार्थिनी बनकर किसी के पास कैसे जाऊँ ॥१४॥

किं वा तवात्यन्तवियोगमोघे कुर्यामुपेक्षां हतजीवितेऽस्मिन् ।
स्याद् रक्षणीयं यदि मे न तेजस्त्वदीयमन्तर्गतमन्तरायः ॥१५॥

अथवा, क्या मैं तुमसे सदा के लिए बिछुड़े अपने अभागे प्राण ही छोड़ दूँ। हाय, यदि तुम्हारे तेज की रक्षा आवश्यक न होती ॥१५॥

साऽहं तपः सूर्यनिविष्टदृष्टिरूर्ध्वं प्रसूतेश्चरितुं यतिष्ये ।
भूयो यथा मे जननान्तरेऽपि त्वमेव भर्ता न च विप्रयोगः ॥१६॥

किन्तु पुत्र हो जानेपर मैं सूर्यमें दृष्टि लगाकर ऐसी तपस्या करूँगी कि अगले जन्म में भी मेरे पति तो तुम ही होवो पर वियोग न हो ॥१६॥

नृपस्य वर्णाश्रमपालनं यत् स एव धर्मो मनुना प्रणीतः ।
निर्वासिताऽप्येवमतस्त्वयाऽहं तपस्विसामान्यमवेक्षणीया ॥१७॥

मनुने कहा है कि—'राजाओं का धर्म वर्णों और आश्रमों की रक्षा करना है।' इसलिए घरसे निकाल देने पर भी तुम यह समझकर मेरी देख-भाल करते रहना कि 'सीता भी एक साधारण तपस्विनी है ॥'१७॥

तथेति तस्याः प्रतिगृह्य वाचं रामानुजे दृष्टिपथं व्यतीते।
सा मुक्तकण्ठं व्यसनातिभाराच्चक्रन्द विग्ना कुररीव भूयः ॥१८॥

लक्ष्मण 'तथा' कहकर ज्यों ही वहाँ से लौटे और आँखों से ओझल हुए, त्यों ही उस ओर विपत्तिके भार से व्याकुल होकर सीताजी भयभीत हुई कुररीके समान डाढ़ मारकर रोने लगीं ॥१८॥

नृत्यं मयूराः कुसुमानि वृक्षा दर्भानुपात्तान् विजहुर्हरिण्यः।
तस्याः प्रपन्ने समदुःखभावमत्यन्तमासीद् रुदितं वनेऽपि ॥१९॥

उनका विलाप सुनकर मयूरों ने नाचना बन्द कर दिया, वृक्ष फूलके आँसू गिराने लगे और हरिणियोंने मुँहमें भरी हुई घास का ग्रास त्याग दिया। इस प्रकार उनके दुःख से दुखी होकर सारा वन रोने लगा ॥१९॥

तामभ्यगच्छद् रुदितानुसारी कविः कुशेध्माहरणाय यातः।
निषादविद्धाण्डजदर्शनोत्थः श्लोकत्वमापद्यत यस्य शोकः ॥२०॥

जिनका शोक व्याधके हाथसे मारे हुए क्रौंचको देखकर श्लोक बनकर निकल पड़ा था उसी समय कुश और समिधा के लिए निकले वे महर्षि सीताजी के पास आये ॥२०॥

तमश्रु नेत्रावरणं प्रमृज्य सीता विलापाद् विरता ववन्दे।
तस्यै मुनिर्दोहदलिङ्गदर्शी दाश्वान् सुपुत्राशिषमित्युवाच ॥२१॥

सीताने आँसू पोंछकर उन्हें प्रणाम किया। गर्भके चिह्न देखकर ऋषिने उन्हें आशीर्वाद दिया कि 'तुम्हें उत्तम पुत्र हो।' और बोले—॥२१॥

जाने विसृष्टां प्रणिधानतस्त्वां मिथ्यापवादक्षुभितेन भर्त्रा।
तन्मा व्यथिष्ठा विषयान्तरस्थं प्राप्तासि वैदेहि पितुर्निकेतम् ॥२२॥

'बेटी वैदेहि! मैंने ध्यान द्वारा जान लिया है कि झूठी अफवाह से व्यथित पति ने तुम्हें छोड़ दिया है। पुत्रि! तुम अपने पिता के ही दूसरे घर आ गयी हो, दुःखी न होओ ॥२२॥

उत्खातलोकत्रयकण्टकेऽपि सत्यप्रतिज्ञेऽप्यविकत्थनेऽपि।
त्वां प्रत्यकस्मात् कलुषप्रवृत्तावस्त्येव मन्युर्भरताग्रजे मे ॥२३॥

यद्यपि राम ने तीनों लोकों का कण्टक दूर कर दिया है, वे अपनी प्रतिज्ञाके पक्के हैं और इतने पर भी आत्मश्लाघी नहीं है फिर भी तुम्हारे साथ उन्होंने जो यह अनुचित व्यवहार किया है, इसे देखकर मुझे उनपर बड़ा क्षोभ है ।।२३।।

तपस्विसंसर्गविनीतसत्त्वे तपोवने वीतभया वसास्मिन् ।
इतो भविष्यनघप्रसूतेरपत्यसंस्कारमयो विधिस्ते ।।२४।।

मेरा यह तपोवन है । तपस्वियोंके संसर्गमें रहते-रहते यहाँके सभी जीव बड़े सीधे हो गये हैं । ये किसीको नहीं छेड़ते । तुम भी निर्भय भावसे रहो । प्रसव में तुम्हें यहाँ कोई कष्ट नहीं होगा और तुम्हारे बच्चों के संस्कार यहाँ विधिविधान से संपन्न हो जाएगे ।।२४।।

पञ्चम कुसुम

महाकाल आरती

कश्चित् कान्ताविरहगुरुणा स्वाधिकारात् प्रमत्तः
शापेनास्तङ्गमितमहिमा वर्षभोग्येण भर्त्तुः ।
यक्षश्चक्रे जनकतनयास्नानपुण्योदकेषु
स्निग्धच्छायातरुषु वसतिं रामगिर्याश्रमेषु ।।१।।

व्यक्तिचेतना का प्रतिनिधि यक्ष प्रिया के प्रेमपाश में इतना आबद्ध हो जाता है कि वह अपने सेवाकार्य का दायित्व भी भूलने लगता है । यहाँ तक कि समष्टि चेतना के प्रतिनिधि भगवान् विष्णु के प्रबोधपर्व पर भी वह असावधान रहता है । विवश स्वामी से शाप मिलता है वर्ष भर के लिए प्रिया और अन्य समस्त प्रियवस्तुओं से बिलकुल दूर रहने का । विवशयक्ष प्रिया से भी हटता है और अलका से भी । वह नीचे उतरता है, बहुत नीचे । परन्तु उसे अपने प्रमाद का बोध होता है और उसे ध्यान आता है भगवान् विष्णु का ही । आ बसता है वह रामगिरि पर, जहाँ भगवान् विष्णु भी उतरकर आए थे और वनवासी राम के रूप में रहे थे सीता के साथ, जहाँ का प्रत्येक जलाशय सीता के स्नान से पवित्र था और जहाँ (शाप नहीं) छाया देनेवाले वृक्ष भी पर्याप्त थे ।।१।।

तस्मिन्नद्रौ कतिचिदबलाविप्रयुक्तः स कामी
नीत्वा मासान् कनकवलयभ्रंशरिक्तप्रकोष्ठः ।

आषाढस्य प्रथमदिवसे मेघमाश्लिष्टसानुं
वप्रक्रीडापरिणतगज - प्रेक्षणीयं ददर्श ॥२॥

कामी यक्ष ने बड़ी कठिनाई से वहाँ आठ महिनें बिताए और हरि-शयनी तिथिको शास्त्रविहित मेघदर्शन के लिए वहीं लगे मेले में आए अन्य सभी भक्तों के समान मुख ऊपर किया तो देखा कि एक मेघ पर्वतचोटी का आलिङ्गन किए हुए है ॥२॥

प्रत्यासन्ने नभसि दयिताजीवितालम्बनार्थी
जीमूतेन स्वकुशलमयीं हारयिष्यन् प्रवृत्तिम् ।
स प्रत्यग्रैः कुटजकुसुमैः कल्पितार्घाय तस्मै
प्रीतः प्रीतिप्रमुखवचनं स्वागतं व्याजहार ॥३॥

उसने देखा श्रावण पास है। उसे शंका हुई कहीं प्रिया के प्राणों का धागा टूट न जाए। बचाने का उपाय सोचा और निश्चय किया उसी मेघ से अपनी कुशलता का सन्देश भेजूँ। उपक्रम में उसने पहले बड़े ही प्रेम से मेघ का स्वागत किया कुरैया के पुष्पों का अर्घ्य दे कर ॥३॥

धूमज्योतिःसलिलमरुतां सन्निपातः क्व मेघः
सन्देशार्थाः क्व पटुकरणैः प्राणिभिः प्रापणीयाः ।
इत्यौत्सुक्यादपरिगणयन् गुह्यकस्तं ययाचे
कामार्ता हि प्रणयकृपणाश्चेतनाचेतनेषु ॥४॥

कहाँ जड मेघ और कहाँ सन्देश की बातें ! पर यक्ष अतीव उत्सुक था। उसने कुछ नहीं सोचा और मेघ से प्रार्थना कर ही बैठा। कामार्त प्राणी किसी से भी याचना करने लगता है। वह चेतन अचेतन नहीं देखता ॥४॥

जातं वंशे भुवनविदिते पुष्करावर्त्तकानां
जानामि त्वां प्रकृतिपुरुषं कामरूपं मघोनः ।
तेनार्थित्वं त्वयि विधिवशाद् दूरबन्धुर्गतोऽहं
याच्ञा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा ॥५॥

उसने कहा, भाई मेघ! मैं जानता हूँ कि तुम पुष्कर और आवर्त्तक मेघों के विश्वविख्यातवंश में पैदा हुए हो और इन्द्र के मुख्य अमात्य हो इस प्रकार तुम्हारा वंश भी ऊँचा है और पद भी। इसीलिए मैं तुमसे याचना कर रहा हूँ। क्षुद्र से पूर्ण होने की अपेक्षा महान् से अपूर्ण याचना अच्छी। क्या करूँ अभाग्यवश प्रिया से दूर आ पड़ा हूँ ॥५॥

संतप्तानां त्वमसि शरणं तत् पयोद प्रियायाः
सन्देशं मे हर धनपतिक्रोधविश्लेषितस्य ।
गन्तव्या ते वसतिरलका नाम यक्षेश्वराणां
बाह्योद्यानस्थितहरशिरश्चन्द्रिका धौतहर्म्या ।।६।।

मित्र मेघ! संतप्त लोगों की रक्षा तुम ही करते हो इसलिए मेरी भी रक्षा करो। मेरा सन्देश मेरी प्रिया तक पहुँचा दो। मुझ स्वयं को तो यक्षराज का शाप है। मित्र मेघ! तुम्हें जाना है सुरम्य नगरी, अलका, यक्षलोक की राजधानी और शिव की चन्द्रकला से धौत ।।६।।

वक्रः पन्था यदपि भवतः प्रस्थितस्योत्तराशां
सौधोत्सङ्गप्रणयविमुखो मा स्म भूरुज्जयिन्याः ।
विद्युद्दामस्फुरितचकितैस्तत्र पौराङ्गनानां
लोलापाङ्गैर्यदि न रमसे लोचनैर्वञ्चितोऽसि ।।७।।

उत्तर दिशा के लिए चले तुम्हारे लिए मार्ग टेढ़ा तो पड़ेगा परन्तु उज्जयिनी के सौधों की गोद से विमुख न होना। वहाँ की पौर वनिताओं के बिजली के चमक से चकित, चञ्चल नेत्रों से रमे नहीं तो तुम्हें मिला क्या ?

अप्यन्यस्मिन् जलधर महाकालमासाद्य काले
स्थातव्यं ते नयनविषयं यावदत्येति भानुः ।
कुर्वन् संध्याबलिपटहतां शूलिनः श्लाघनीया-
मामन्द्राणां फलमविकलं लप्स्यसे गर्जितानाम् ।।८।।

मित्र मेघ, और कभी भी पहुँचों तो महाकाल (शिव के पास) जाकर सूर्य डूबते तक रुके रहना। शिव की सान्ध्य पूजा में नगाड़े का काम तुम्हीं कर देना, पर प्रशंसनीय रूप में। तब तुम्हारी निरर्थक गड़गड़ाहट भी सार्थक हो जाएगी ।।८।।

पश्चादुच्चैर्भुजतरुवनं मण्डलेनाभिलीनः
सान्ध्यं तेजः प्रतिनवजपापुष्परक्तं दधानः ।
नृत्यारम्भे हर पशुपतेरार्द्रनागाजिनेच्छां
शान्तोद्वेगस्तिमितनयनं दृष्टभक्तिर्भवान्याः ।।९।।

सन्ध्या की ललाई लिए तुम शिवजी की भुजाओं में चारों ओर से लिपट कर गजासुर के ताजे चर्म का काम भी कर देना। उससे पार्वती जी की भी आराधना हो जाएगी। चर्म के स्थान पर तुम्हें पा उद्वेग शान्त रहेगा और वे धीर नेत्रों से अपने प्रियतम भगवान् शिव का नृत्य देख सकेंगी ।।९।।

अकिञ्चनः सन् प्रभवः स सम्पदां त्रिलोकनाथः पितृसद्मगोचरः ।
स भीमरूपः शिव इत्युदीर्यते न सन्ति याथार्थ्यविदः पिनाकिनः ।।

शिव के पास कुछ भी नहीं रहता, किन्तु वे समस्त सम्पदाओं के उत्पत्ति स्थान हैं। वे श्मशानवासी हैं, किन्तु त्रैलोक्याधिपति हैं। उनका रूप भयावह है पर हैं वे शिव (कल्याणकारी)। अतः कोई नहीं कह सकता कि शिव वस्तुतः क्या हैं ।।१०।।

विभूषणोद्भासि पिनद्धभोगि वा गजाजिनालम्बि दुकूलधारि वा ।
कपालि वा स्यादथवेन्दुशेखरं न विश्वमूर्तेरवधार्यते वपुः ।।

शिव का शरीर नहीं देखा जाता वह चाहे अलंकारों से उद्भासित हो चाहे साँपों से आवेष्टित, चाहे दुकूल धारी हो चाहे गज-कृत्तिधारी, इन्दुशेखर हो या कपाली ।।११।।

तदङ्गसंसर्गमवाप्य कल्पते ध्रुवं चिताभस्मरजो विशुद्धये ।
तथाहि नृत्याभिनयक्रियाच्युतं विलिप्यते मौलिभिरम्बरौकसाम् ।।१२।।

चिता-भस्म भी उनके शरीर के संसर्ग से इतनी पवित्र हो जाती है कि वह दूसरों को पवित्र करने लगती है। तभी तो नृत्याभिनय के समय गिरी हुई उस भस्म को देवता लोग अपने सिर पर लगाते हैं ।।१२।।

असम्पदस्तस्य वृषेण गच्छतः प्रभिन्नदिग्वारणवाहनो वृषा ।
करोति पादावुपगम्य मौलिना विनिद्रमन्दाररजोऽरुणाङ्गुली ।।१३।।

शिव के पास कुछ नहीं है, वे वृष (अहिंसक सनातन धर्म) पर चलते हैं किन्तु मदमत्त दिग्गजों पर चलनेवाला देवलोक का स्वामी इन्द्र उनके चरणों की उँगलियाँ अपने सिर पर लगे खिले मन्दारपुष्पों के पराग से रञ्जित किया करता है। १३।।

भरत-वाक्य

प्रवर्त्ततां प्रकृतिहिताय पार्थिवः
सरस्वती श्रुतिमहती महीयताम् ।
ममापि च क्षपयतु नीललोहितः
पुनर्भवं परिगतशक्तिरात्मभूः ।।

शासन जनता के हित में निरत रहे और वैदिक वाङ्मय से पवित्र संस्कृतभाषा की प्रतिष्ठा हो (जिससे) हममें से प्रत्येक को अभ्युदय के मार्ग से निश्श्रेयस मिल सके और पुनर्जन्म से छुटकारा मिल जाए।